Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-1, Jan – June 2023

कालिदास- साहित्य में प्रकृतिविषयक संवेदना

प्रो. मुरलीमनोहर पाठक
कुलपति
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। उसने अपने अनेकविध मनोरम रूपों से हमें अलंकृत किया है। महाकवि जब जैसा वर्णन करना चाहते हैं, वैसा अत्यंत सफलतापूर्वक कर डालते हैं। ऐसा वैशिष्ट्य अन्यत्र दुर्लभ है। विश्वसाहित्य में शेक्सपियर को अन्तर्जगत तथा कालिदास को बाह्य जगत् का श्रेष्ठ साहित्यकार स्वीकार किया जाता है। बाह्यजगत के चित्रण में तथा प्रकृति को उसके चरम ललाम रूप में प्रस्तुत करने में महाकवि कालिदास अद्वितीय है। इनके प्रकृति वर्णन में इतनी सजीवता, रमणीयता, भव्यता तथा स्वभाविकता के दर्शन होते हैं, जिससे पाठक एवं श्रोतृवर्ग वहीं रम जाता है। सामान्य रूप से प्रकृति के रूप में पंचमहाभूतों तथा सृष्टि में दृष्टिगोचर अन्य उपादानों का ग्रहण किया जाता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर सम्पूर्ण प्राणिवर्ग भी प्रकृति के अन्तर्गत ही आ जाता है। महाकवि का इस क्षेत्र में महत्तम अवदान यह है कि उन्होंने जहाँ एक ओर आन्तरिक एवं बाह्य प्रकृति का समन्वय स्थापित किया है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के निर्जीव एवं सजीव-उभयविध उपादानों के मध्य मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापित करते हुए लता-वीरूधों के अन्दर भी वैसे ही संवेदना के दर्शन कराए हैं, जो मानव-सुलभ है। उन्होंने अपनी सभी कृतियों में प्रकृति को पात्रों के साथ जोड़ते हुए चित्रित किया है। प्रस्तुत आलेख में महाकवि की रचनाओं में गुम्फित प्रकृति विषयक संवेदनाओं को रेखांकित करना संकल्पित है।

ऋतुसंहार को कालिदास की प्रथम कृति होने का गौरव प्राप्त है। यह प्रकृति के मनोहर सौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण का जाज्जवल्यमान निदर्शन है। यद्यपि इसमें ऋतुओं का आश्रय लेकर प्रकृति की सहज विशेषताओं का वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हुआ है, तथापि उसमें मानवीय संवेदना के दर्शन भी होते है। अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है-

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः।
कूजदलिरेफोप्प्ययमम्बुजस्थ: प्रियं प्रियाया प्रकरोति चाटु।।[1]

पद्य का भावार्थ यह है कि नर कोकिल आम्रमंजरियो के रस से मत्त होकर अपनी प्रिया को बड़े प्रेम से प्रसन्न होकर चूम रहा है। कमल पर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह भ्रमर भी अपनी प्रिया का प्रिय-मनोवांछित कार्य किए जा रहा है। प्रस्तुत पद्य में महाकवि ने प्राकृतिक उपादान नर कोकिल एवं भ्रमर में मानवीय संवेदना का सुन्दर संचार किया है।

मेघदूत प्रकृति-रमणी के लालित्यपूर्ण मनोरम विलास-चेष्टाओं का आकार है। पूर्वमेघ में आरम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त प्रकृति का अनुपम वर्णन दृष्टिगोचर होता है। वर्षा के आरम्भ का एक वर्णन द्रष्टव्य है-

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।[2]

इस पद्य में पवन, चातक एवं बलाकाओं की स्वाभाविक संवेदना मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। सम्पूर्ण पूर्वमेघ अत्यन्त भव्य एवं मनोरम प्राकृतिक दृश्य-चित्रों से भरा है। मेघदूत का प्रकृति वर्णन एक ओर प्राकृतिक रमणीयता का सुंदर चित्रांकन है, तो दूसरी ओर बाह्य एवं अन्तर्जगत का परस्पर सामंजस्य दिखाने वाला है। उन प्राकृतिक दृश्यों को देखकर केवल कवि के, यक्ष के अथवा मेघ के ही हृदयगत भाव नही अभिव्यक्त है, अपितु ग्रामवधूटियों, पथिकों और विरहियों की संवेदनाएँ भी वहाँ मूर्त रूप ग्रहण करती हुई दृष्टिगत होती हैं। इससे भी बढकर चातकों, मयूरों, बगुलों तथा हंसों की भी संवेदनाओं का सुंदर रेखांड्कन किया गया है। ऊबड़-खाबड़ बिन्ध्य के निचले भाग में बहती हुई रेवा सजे हुए हाथी के अंग सी जान पडती है। कवि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।[3]

कृषि मेघ के अधीन है, इस तथ्य से भलीभाँति अवगत भ्रूविलासों से अनभिज्ञ ग्रामवधूटियों की मेघ के प्रति अभिव्यक्त संवेदना द्रष्टव्य है-

त्वय्यायत्तां कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।।[4]

अलकापुरी की बधुएँ अपने सारे आभूषण कल्पवृक्ष से प्राप्त करती हैं। उनके हाथों में कमल के आभूषण, चोटियों में नवीन खिले हुए कुन्द के फूल लोघ्र के पुष्पराग से गौरमुख, कुरबक के पुष्पों से गुँथी हुई चूडा, शिरीष पुष्प से वेष्टित सुन्दर कर्ण तथा वर्षा में खिलने वाले कदम्ब के फूलों से सजे सीमन्त-सभी का मन माह लेते हैं। प्रकृति से आवेष्टित उनकी यह छटा निराली है-

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसबरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारू कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।[5]

कुमारसम्भव महाकाव्य प्रकृति-नटी के ललित लास्य की रंगशाला के समान है। प्रथम सर्ग का हिमालय-वर्णन विश्वसाहित्य में अनुपम है। इसमें अनेक मानव संवेदनाएँ मुखर हुई है। गंगा के झरनों फुहार से लदा हुआ, बार-बार देवदारू के वृक्ष को कँपाता हुआ और किरातों की पेटी में बँधे हुए मोरपंखो को फहराता हुआ यहाँ का शीतल-मन्द-

मन्द-सुगन्ध पवन उन किरातों की श्रान्ति को मिटाता चलता है, जो मृगों के अन्वेषण में हिमालय पर इधर-उधर भ्रमण करते रहते हैं -

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारूः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः।।[6]

इस पद्य में पवन की मानवीय संवेदना का महाकवि ने अत्यन्त मनोरम चित्रण किया है। हिमालय के आस-पास की प्रकृति तत्रस्थ अप्सराओं को समय का ज्ञान भी कराती है यद्यपि इसमें कभी-कभी भ्रम भी हो जाता है, तथापि उनके प्रति इसकी संवेदना द्रष्टव्य है। पद्य इस प्रकार है-

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्विभाति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्।।[7]

पद्य का भाव यह है कि हिमालय की कुछ चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की अनेक रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। इसलिए कभी-कभी इन चट्टानों के पास पहुँचे हुए बादलों के टुकड़े उनके रंग की छाया पड़ने से सन्ध्याकालीन बादलों जैसे रंग-बिरंगे दृष्टिगत होने लगते हैं। उन्हें देखकर सन्ध्या होने से पहले ही वहाँ की अप्सराओं को यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गई और इस सम्भ्रम में वे सायंकालीन नृत्य-गीतादि के लिए अपना श्रृगार करना प्रारंभ कर देती है।

रघुवंश महाकाव्य में रमणीय प्राकृतिक संवेदना के दर्शन होते है। ऋषि वसिष्ठ के आश्रम में रहने वाले मृगों को ऋषिपत्नियाँ अपत्यवत् मानती थीं तथा उन्ही के समान उन्हें भी नीवार प्रिय था। ऋषिकन्याएँ वृक्षों की जडों में पानी डालकर वहाँ से दूर हट जाती थी, जिससे निर्भय होकर वन के पक्षी उन वृक्षों के थालों का जल पी सकें। पक्षियों के लिए ऋषिकन्याओं की यह संवेदना विलक्षण है। महाकवि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिवनीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।।
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।।[8]

महाकवि कालिदास मूँगों की चट्टानों से टकराने के कारण छिटे हुए मुखवाले शंखो को देखकर दुःखी है। वे कहते हैं-

तवाधरस्पर्धिषु बिद्रुमेषु पर्यास्तमेतत् सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वाड.कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शंखयूथम्।।[9]

इस पद्य मे श्रीराम, सीता से कहते है कि लहरों के झोंको से तुम्हारे अधरों के समान लाल-लाल मूँगें की चट्टानों से टकराकर इन जीवित शंखो के मुख छिद गये है और उस पीडा से ये बेचारे अत्यंत कठिनाई पूर्वक इधर-उधर घूम फिर पा रहे हैं। शंखो के प्रति कवि की यह संवेदना हृदय को छू जाती है। कालिदास ने अनेक स्थलों पर मानवीकरण किया है। वे पृथ्वी को एक सुन्दर रमणी के रूप में चित्रित करते हैं। उन्होंने मलय एवं दुर्दर नामक चन्दन वृक्षों से युक्त पर्वतों को

दक्षिणदिशारूपी स्त्री के स्तनों के रूप में उपकल्पित किया है। वहीं पर सह्î पर्वत को पृथ्वीकामिनी के खिसकी हुई साड़ी वाले नितम्ब के रूप में प्रस्तुत किया है -

स्निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ
स्तनाविव दिशास्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ।
असह्यविक्रमः सह्या दूरान्मुक्तमुदवन्ता
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रंस्तांशुकमलङ्.घयत्।।[10]

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि कवि ने समुद्र को पृथ्वी के वस्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रकृति का प्रकति से ही ऐसा श्रृंगार अन्यत्र दुर्लभ है।

कालिदास ने पञ्चभूतों में अन्यतम आकाश पर भी दृष्टिपात किया है। उन्हें दृष्टिकारक बादलों से आच्छन्न आकाश कुछ अधिक ही अच्छा लगता है। इसीलिए वे प्रसवोन्मुखी सुदक्षिणा को तत्काल बरसने वाले मेघों से व्याप्त आकाश के समान देखते है-

पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखी प्रियां दर्दर्श काले दिवमभ्रितामिव।।[11]

कालिदास ने आकाश में दृश्यमान अनेक ताराओं के साथ भी मानाव को जोड़ते हुए सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। कहीं वे दिलीप एवं सुदक्षिणा की उपमा चैत्री पूर्णिमा के दिन चित्रासहित चन्द्रमा से देते हैं,[12] तो कहीं सूर्यरहित पाँच उच्चग्रहों के काराण रघु के उन्नत भविष्य के दर्शन कराते हैं।[13]

रघुवंश में नन्दिनी को सन्ध्या एवं रानी सुदक्षिणा को रात्रि के रूप में कल्पित किया गया है। नन्दिनी सन्ध्याकाल में ही घर लौटती है। उसकी अगवानी रानी सुदक्षिणा करती हैं तथा उसके पीछे-पीछे महाराजा दिलीप चलते हैं। दिलीप दिन है तथा रानी रात्रि। इन दोनों के मध्य स्थित नन्दिनी एसे सुशोभित हो रही थी, जैसे दिन और रात के बीच सन्ध्या-

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।[14]

कवि ने अनेक स्थलों पर शमी, शाल, अखरोट आदि वृक्षों का उल्लेख करते हुए मानव के साथ जोड़ा है।[15] वृक्षों के प्रति कवि के आदर का सर्वोत्तम निदर्शन वहाँ देखा जा सकता है, जब सिंह नन्दिनी से यह कहता है कि जो तुम्हारे सामने बड़ा सा देवदारू का वृक्ष खड़ा दिखाई दे रहा है, इसे भगवान शिव अपने पुत्र के समान मानते हैं, क्योकि स्वयं माता पार्वती ने अपने सोने के घट जैसे स्तनों के रस से सींच -सींच कर इतना बड़ा किया हैं। एक बार एक जंगली हाथी आकर इसे रगड़कर अपनी कनपटी खुजलाने लगा, जिससे इसकी त्वचा थोड़ी-सी छिल गई। इसके बाद पार्वती को वैसा ही शोक हुआ, जैसा दैत्यों के बाणों से घायल स्वामी कार्तिकेय को देखकर हुआ था। प्रकृति के साथ ऐसी संवेदना कालिदास ही व्यक्त कर सकते है पद्य इस प्रकार है-

अमुं पुरः पश्यसि देवदारूं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।

यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः।।
कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः।।[16]

प्रकृतस्थल पर कालिदास ने एक प्राकृतिक उपादान-देवदारू को शिव का पुत्रोपम बताया है, अन्यत्र सरयू नदी को राम की माता के समान प्रतिष्ठित किया है। राम कहते है- मैं इस पवित्र नदी का अत्यन्त सम्मान करता हूँ, क्योकि यह उत्तर कोसल के राजाओं की धात्री है। इसी की रेत में वे खेल-खेल कर बढ़े तथा इसी का मीठा जल पीकर पुष्ट होते रहे हैं। आदरणीय राजा दशरथ से वियुक्त मेरी माँ मे समान ही यह सरयू अपने ठण्डे वायु वाले तरंग रूपी हाथ उठाकर मानों इतनी ऊचाई से ही मुझे गले लगाना चाह रही हो-

यां सैकतोत्संगसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं से सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम्।।
सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मा तरंगहस्तैरूपगूहतीव।।[17]

कालिदास की नाट्यकृतियों में 'मालविकाग्निमित्रम्' को प्रथम रचना माना जाता है। उसका कथानक कुछ इस प्रकार का है कि इसमें प्रकृति विषयक संवेदना प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। इसके बाद भी प्रकृति-कवि की कृति होने के कारण कुछ न कुछ बिन्दु अवश्य ढूंढ़े जा सकते हैं। नाटक के प्रथम अंक में ही कवि ने दो पुष्पों का नामकरण मा◌ानव के रूप में कर के प्रकृति संवेदना को अक्षुण्ण रखा है। वे दोनों पात्र हैं-बकुलावलिका और कुमुदिनी। महाकवि ने इस नाटक में मध्याह्न वर्णन के माध्यम से पक्षिविषयक संवेदना व्यक्त की है। धूप से बचने के लिए हंस, कबूतर एवं मयूरों के उपाय द्रष्टव्य हैं -

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद्बलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि।
बिन्दुक्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं
सवैरूस्त्रैः समग्रैस्त्वमिव नष्पगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः।।[18]

पद्य का भावार्थ यह है कि बावड़ियों में कमल की पंखुडियों की छाया में हंस आँख मूँदकर विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा तप गया है कि छज्जों पर कबूतर नहीं बैठ रहें है। चलते हुए रहट से उछलती हुई पानी की बूँदें पीने के लिए मोर उसके चारों ओर चक्कर काट रहें हैं और सूर्य अपनी समग्र किरणों के साथ उसी प्रकार चमक रहा है जैसे आप अपने राजा के गुणों से चमकते रहते हैं। एक स्थल पर कवि ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि प्राकृतिक सुषमा मनुष्यों की सुन्दरता से अधिक रमणीय है-

रक्ताशोकरूचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारूणम्।

आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव सुखप्रसाधनविधौ श्रीर्भाधवी योषिताम्।।[19]

अर्थात् यह लाल अशोक की लालिमा तो स्त्रियों के बिम्बाधरों की लालिमा को लजा रही है। काले, उजले और लाल वर्णो के कुरबक के फूल स्त्रियों के मुखों पर बनाई गई चित्रकारी को फीका कर रहे हैं। काले भ्रमरों से लिपटे हुए तिलक के फूल स्त्रियों के भाल पर लगे तिलक को तिरोहित कर हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वासन्ती शोभा आज स्त्रियों के मुख के सारे श्रृंगार का निरादर करने की ठान रखी है।

मनुष्यों को प्रकृति से जो विचार और प्रेरणाएँ मिलती हैं, उन्हें व्यक्त करने की शक्ति वस्तुतः प्रकृति में ही है क्योंकि मनुष्य और प्रकृति के बीच वही चेतना व्याप्त है, जिससे दोनों में परस्पर आन्तरिक सम्बन्ध उतनी शीघ्रता से और आवश्यक रूप से संभव हैं, जैसा कि परस्पर प्रेम करने वाले दो मित्रों में होता है और ऐसे सम्पर्क के लिए सदा व्यक्त भाषा की आवश्यकता भी नहीं होती। कालिदास का यह मन्तव्य है कि एक ही विश्वात्मा मनुष्य, वनस्पति और समस्त सृष्टि में व्याप्त है। प्रमाण के रूप में उर्वशी के उस कथन को उद्धृत किया जा सकता है, जो उसने होने का श्राप पाकर और फिर अपना पूर्व रूप धारण करके अपनी लता की अवस्था के अनुभव का स्वरूप हमारे सम्मुख रख दिया है।

अभ्यन्तरकरणया मया प्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तः खलुः महाराजा।[20]

अर्थात मैने अपनी भीतरी इन्द्रियों से महाराज जी की सब बातें जान ली थीं। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि लता-पादपों में भी मनुष्य की सभी संवेदनाएँ होती हैं जिन्हें वे यथासमय व्यक्त कर सकते हैं। मनुष्य की संवेदनाऐं किस प्रकार प्राकृतिक उपादानों का अनुसरण करती हैं इसे कालिदास ने एक सुन्दर उपमा के माध्यम से बताया है-

एषा मनों में प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती
सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात् सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।।[21]

अर्थात जैसे मृणाल के दो खण्ड कर के एक खण्ड से दूसरे टुकड़े के दूर किए जाने पर भी इसमें से निकलता हुआ सूत्र दोनों का सम्बन्ध बनाए रखता है, उसी प्रकार उर्वशी के चले जाने पर भी महाराज की आँखें और समस्त अन्तर्वृत्तियाँ उसी ओर लगी हैं।

'अभिज्ञानशाकुन्तल प्रकृतिवषयक संवेदना का चूडान्त निदर्शन है। साधारणतः पशु-पक्षियों का लालन-पालन मनुष्यों द्वारा किया जाता है किन्तु शकुन्तला स्वयं शकुन्तैः-पक्षिमिर्लालिता अर्थात पक्षियों द्वारा लालिता है। कण्व ने अपनी पालिता कन्या के लिए बाल सखियों के रूप में अनसूया और प्रियंवदा नाम की दो सखियाँ भी दे दीं। इतना ही नहीं, उसके लिए उन्होंने माधवी, अतिमुत्तक और सबसे अधिक शाकुन्तला की बहन नवमालिका भी दे दी थी, जिसका उसने प्रेम से वनज्योत्स्ना नाम रख दिया था। बकुल, केसर, सहकार और दूसरे स्नेह और सावधानी से रोपित व पालित वृक्ष दिये थे और वन के देवी-देवता तो उसके साथ थे ही। इन सभी आश्रम निवासियों का तत्परतापूर्वक पालन करना,

पानी देना, पोषण करना, इन सबके सुख का ध्यान रखना और समय-समय पर अतिथियो का स्वागत-सत्कार करना - ये सब निन्य कर्म कण्व ने शकुन्तला को सौंप दिए थे और उसे इन कामों में आनन्द भी आने लगा था। वह कहती है-

'केवलं तादणिओओ अत्थि ममावि सोदरसिणेहो एदेसु'[22]

अर्थात् में केवल पिता जी की आज्ञा से इनकी सेवा नहीं करती हूँ, अपितु इनके प्रति मेरा सगे भाई - बहन का स्नेह है। सम्भवतः इसीलिए वह उन्हें जल पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी आभूषणप्रिया होने पर भी उनके पल्लवों को नहीं तोड़ती थी उनके प्रथम कुसुमोद्भव के अवसर पर उत्सव मनाती थी। इसीलिए उसके पतिगृहगमन के अवसर पर कण्व सभी से अनुमति माँगते हैं-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[23]

शकुन्तला को केवल प्रतिदिन लताओं में पानी देना और उनका पोषण ही नहीं करना पड़ता था, अपितु उनके प्रति उसकी इतनी अधिक संवेदना थी कि जब कभी उसमें उभरते हुए यौवन के लक्षण दृष्टिगोचर होते थे, तब उन्हें उचित वृक्षों के सहारे चढ़ाना भी पड़ता था अथवा यदि शकुन्तला के समान ही बड़ों की प्रतीक्षा किए बिना वे स्वयंवर या आत्मनिर्णय से अपना सम्बन्ध कर लेते थे, तो भी उनके सौभाग्योत्सव का आयोजन करना होता था। इसी प्रकार उसे मृगशावकों की देखभाल भी करनी पड़ती थी, विशेषरूप से तब, जब प्रथम बार घास खाते हुए, उनके मुँह कट जाते थे। आश्रम में एक ऐसा मृगशावक भी था, जिसकी माँ उसके जन्म लेते ही मर गई थी। शकुन्तला ही उसकी माँ बन गई थी। उसने प्रेम से उसका नाम दीर्घापांग (बडी-बडी आँखों वालाँ) रखा था। वह धीरे-धीरे उस मृगशावक के कटे हुए ओष्ठों पर इंगुदी का तेल लगाती और वस्तुतः उसे वैसा ही लाड़-प्यार देती, थी जैसा प्रकृति माता ने उसे दिया था। तभी तो वह शावक स्नेहातिशय से उसका मार्ग रोक रहा था-

यस्य त्वया वृणविरोपणभिंगुदीनां तैलन्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धिको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ता।।[24]

शकुन्तला को अपने आने के बाद भी उसके योगक्षेम की चिंता है, तभी तो अपने पिता को उसकी सेवा में नियुक्त करते हुए वह कहती है-

वत्सा! किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरासि। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया बिरहितं त्वां तातः चिन्तयिष्यति।[25]

इस प्रसंग से यह स्पष्ट परीलक्षित होता है कि इन सबके मध्य इतनी गहरी संवेदना रही होगी कि ये सब परस्पर एक दूसरे की अपेक्षाओं और भावों को भलीभाँति समझते होंगे। तभी तो इस निसर्गकन्या शकुन्तला को सभी प्राकृतिक उपादान

नैसर्गिक सौन्दर्योपायन भेंट कर रहे हैं। किसी वृक्ष ने उसे शुभ्र मांगलिक वस्त्र दिए, किसी ने पैर में लगाने के लिए महावर दिया और वनदेवियों ने तो कोपलों से प्रतिस्पर्धा कर के वृक्षों में से कलाई तक अपने हाथ निकाल कर अनेक आभूभूषण दे दिए-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतं।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अनेभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।[26]

शकुन्तला की उन लता -वीरूधों और पशु-पक्षियों के प्रति गहरी संवेदना का ही यह परिणाम है कि उसके सौप्रस्थानिक के समय हरिणियाँ चबाए हुए कुश के कवलों को उगल दे रही हैं, मयूर नाचना बंद कर रहे हैं तथा लताओं से पीले-पीले पत्ते इस प्रकार झड़ रहें है, जैसे लताएँ आँसू बहा रही हों-

उद्गलिदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूष्णीव लता।[27]

चलते -चलते शकुन्तला अपनी बहन वनज्योत्स्ना से मिलना नहीं भूलती है। वह कहती है-

तात! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये।[28]

इसका उत्तर देते हुए कण्व कहते हैं-

अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्।[29]

लता-पादपों के प्रति गहरी संवेदना केवल शकुन्तला के मन में ही नहीं है अपितु कण्व के मन में भी वे ही भाव है। तभी तो वे वनज्योत्स्ना को लक्ष्य करते हुए शकुन्तला से कहते है- मैंने तेरे लिए जैसे पति का संकल्प किया था, तुमने अपने पुण्य प्रभाव से वैसा ही पति प्राप्त कर लिया और इस वनज्योत्स्ना को भी आम का उचित सहारा मिल गया है। अब में तुम दोनों की चिंता से मुक्त हो गया हूँ-

संकल्पितं प्रथमेव मया तवार्ये भर्त्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन सश्रितवती नवमालिकेयमस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः।।[30]

यही महाकवि कालिदास का वैशिष्ट्य है कि वे जो भी वर्णन करते हैं, उसमें प्राण डाल देते हैं। वे वस्तुतः प्रकृति के कवि हैं, चाहे वह प्रकृति निसर्गरूप हो, या स्वभावस्वरूपा महाकवि की गति सर्वत्र अप्रतिहत है। उनकी सभी रचनाओं में यह प्रकृतितत्व अनुस्यूत है। जब तक उनके इन प्रकृतितत्व का बोध नहीं प्राप्त किया जायेगा, तब तक उनको समझा नही जा सकता है। प्रकृति उनके रोम-रोम तथा आत्मा में समायी हुई है। इसीलिए उनके मन में उसके प्रति इतनी गम्भीर संवेदना है। यदि यही संवेदना आज आम जन के मन में हो जाय, तो हम इस घोर विनाश से बच सकेगें और पर्यावरण

का संरक्षण करते हुए उसका शतप्रतिशत लाभ ले सकेंगें। ऐसे में हम प्रकृति का दोहन न करते हुए उसका सदुपयोग करेगें, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में संतुलन स्थापित होगा।

संदर्भ-

1. ऋतुसंहार, 6.16.
2. पूर्वमेघ, 10
3. वही, 20
4. वही, 16
5. उत्तरमेघ, 2
6. कुमारसम्भव, 1.15
7. वही, 1.4
8. रघुवंश, 1.50-51
9. वही, 13.13
10. वहीं, 4.51-52
11. वही, 3.12
12. वही, 1.46
13. वही, 3.13
14. वही, 2.20
15. दृष्टव्य, वही, 1.13,3.9,4.69 इत्यादि।
16. वही, 3.36-37
17. वही, 13, 62-63
18. मालविकाग्निमित्र, 2.12
19. वही, 3.5
20. विक्रमोर्वशीय, 4.71 के आगे का गद्यखण्ड
21. वही, 1.20
22. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1.17 के आगे का गद्यखण्ड
23. वही, 4.9.
24. वही, 4.14.
25. वही, 4.14 के आगे का गद्यभाग
26. वही, 4.5

27. वही, 4.12.

28. वही, आगे का गद्यभाग

29. वही

30. वही, 4.13.